अंतरराष्ट्रीय



और अब जमीनी लड़ाई

चौबीस दिन बीतने को आये और खाड़ी में चल रहे महासमर का ऊंट किस करवट बैठेगा, अभी कुछ कहना मुश्किल है। दोनों ओर से हवाई हमले जारी हैं, फिलहाल तो कोई दो कदम पीछे हटने को तैयार नहीं दिखाई दे रहा। अब जबकि खाड़ी क्षेत्र जमीनी युद्ध के लिए तैयार होता दिखाई दे रहा है, इस युद्ध का निर्णायक दौर भी करीब और करीब आता दिख रहा है। सद्दाम जहां जमीन लड़ाई को बहुराष्ट्रीय सेना के लिए और ज्यादा अपरिहार्य और मुश्किल बनाने की तैयारी में लगे हुए हैं। वहीं बुश साहब के कमांडर खतरनाक 'फ्यूल एयर बम' की बरसात कर आने वाले 'जमीनी युद्ध' को अपने पक्ष में और आसान करने की तैयारी में। अमरीका जमीनी युद्ध को लेकर पशोपेश में है और हालात का जायजा ले रहा है। बुश साहब से यह बात छिपी नहीं है कि हवाई हमले में तो वह काफी हद तक कामयाब रहे, लेकिन 'आपरेशन डेजर्ट स्टार्म' का डेजर्ट ही उनके लिए मुसीबत साबित होने जा रहा है। बुश साहब और उनके पश्चिमी साथियों को अब याद आ रहा है कि खुले हाथ और मुंहमांगी कीमत पर उनके द्वारा इराक को बेचे गये हथियार भी अब उन्हीं की मुसीबत को और ज्यादा बढ़ाने का सबब साबित होंगे। फिलहाल खाड़ी का जमीनी युद्ध करीब है और यही इस महासमर का निर्णायक दौर भी साबित होगा। सद्दाम के 'सैंड बैंक' और 'तेल भरी खाइयां' बहुराष्ट्रीय सेना के टैंकों का रास्ता रोकने के लिए रेगिस्तान में तैयार खड़ी है और यह भी तय है कि बहुराष्ट्रीय सेना, अगर जमीनी युद्ध हुआ तो हवाई हमले की आड़ में जमीनी लड़ाई की ओर बढ़ेगी तभी शायद उसके हाथ कुछ हासिल हो सके।



सद्दाम झुकने को तैयार नहीं, बुश की बौखलाहट चरम सीमा पर

खाड़ी-युद्ध को अब तकरीबन एक महीना पूरे होने को है और अमरीकी नेतृत्व में इराक के खिलाफ मोर्चा ले रही बहुराष्ट्रीय सेनाओं के दावे के मुताबिक आधा इराक नष्ट हो चुका है। लेकिन उसके बावजूद इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के घुटने टेकने की बात तो दूर, वे किसी आसान शर्त पर युद्धविराम तक को भी तैयार नहीं हैं। आखिर सद्दाम के पास ऐसी कौन-सी ताकत है, जिसके आगे अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश और उनका साथ देने वाले सारे देशों के सारे दावे एक-एक करके गलत साबित होते जा रहे हैं?

महाशक्ति होने के मद में चूर जॉर्ज बुश ने अगर थोड़ा-सा विवेक से काम लिया होता तो सद्दाम हुसैन को नीचा दिखाने की मंशा पूरी करने में उन्हें इतनी जहमत नहीं उठानी पड़ती और इतना कुछ करने के बावजूद उन्हें सफलता मिल जाती तो संतोष की बात थी। अमरीका को पहली बार इस तरह की लड़ाई झेलनी पड़ी है और शायद इसीलिए जॉर्ज बुश इसे अन्तिम लड़ाई बता रहे हैं, जो उनके खोखले और दिवालिया होने का सबूत है। जॉर्ज बुश के लिए इतना ही काफी था कि सद्दाम हुसैन सरीखे 'पिद्दी के शोरबे' ने अमरीका जैसे 'स्वयंभू चौधरी को आंख दिखाने की जुर्रत की। कुवैत पर हमला सीधे अमरीका को चुनौती देना था, क्योंकि कुवैत की रक्षा का जिम्मा अमरीका ने अपने ऊपर ले रखा था। फिर अमरीका को इराकी ताकत का नजदीक से जायजा लेने की जरूरत ही क्या थी, क्योंकि अमरीकी रक्षा विश्लेषकों की राय में इसका एकमात्र समाधान इराक को सबक सिखाना है, जो हथियारों का भय दिखाकर ही संभव है। इस अपरिपक्व धारणा ने अमरीका को ऐसे दलदल में फंसा दिया, जहां पर यह दोष बिल्कुल फिट बैठता है:

कीच ही कीच है नील कंवल तक काए करूं उपाय,
इक पल खींच निकारूं दूजा और भी धंसता जाय।

वास्तव में अमरीका और इराक के युद्ध के पीछे की मंशाएं अलग-अलग हैं, अगर दोनों का उद्देश्य सिर्फ एक-दूसरे को पराजित करना होता तब शायद लड़ाई लम्बी नहीं खिंचती। अमरीका की नजर में इस समस्या का एकमात्र समाधान इराक पर बमबारी करके उसे इतना असहाय कर देना है, ताकि अगर स्वेच्छा से वह कुवैत को मुक्त न करे तो उसके तमाम सैनिक ठिकाने नष्ट करके कुवैत को आजाद करा लिया जाय। जबकि इसके ठीक विपरीत सद्दाम हुसैन युद्ध को राजनैतिक रंग दे चुके हैं। उनका इरादा अरब जगत समेत अन्य देशों (जो अभी तक इस युद्ध से अलग-थलग हैं) को भी इस जंग में घसीटना है। इसलिए शुरू से ही इराकी सैनिकों ने अमरीकी और बहुराष्ट्रीय सेना के बमवर्षकों के हमलों का जवाब देने के बजाय अपनी मिसाइलों का उपयोग इजराइल को उत्तेजित करने के लिए किया, ताकि खींझकर इजराइल बहुराष्ट्रीय सेना में शामिल हो जाये और तमाम मुस्लिम जगत इराक के साथ हो जाये, क्योंकि अरब देश फिलिस्तीनियों के साथ पिछले २४ वर्षों से चल रही इजराइली ज्यादती की वजह से पहले से ही नाराज हैं, लेकिन अमरीका के आगे उनकी कुछ चल नहीं पाती। अपने स्वार्थ के लिए फिलस्तीनी मामले को ढाल बनाकर फिलहाल तो इराक ने फिलस्तीनी मुक्ति मोर्चे को नुकसान ही पहुंचाया है, वैसी संभावना थी भी।

इजराइली बमवर्षकों ने दक्षिण लेबनान स्थित पी. एल. ओ. (फिलस्तीनी मुक्ति मोर्चा) ठिकानों पर भारी बमबारी (पांच फरवरी) की, जिसमें पांच व्यक्ति घटनास्थल पर ही मारे गये और एक दर्जन से भी ज्यादा गम्भीर रूप से घायल हो गये। इजराइल का आरोप है कि पी.एल.ओ. अध्यक्ष यासर अराफात के इशारे पर बहुत सारे फिलस्तीनी गुरिल्लों ने हाल में इजराइल और सऊदी अरब पर हुए हमलों में इराकी सेना को मदद पहुंचायी है। सि बात की पुष्टि तो नहीं हो पायी है, लेकिन श्री अराफात दो-तीन बार यह अवश्य बोल चुके हैं कि अगर अमरीकी हमले बंद नहीं हुए तो पी.एल.ओ. भी इराक की ओर से जंग में कूद पड़ेगा। कुछ दिन पहले भी इजराइल ने आपातकालीन कर्फ्यू लगाकर उसी बहाने अधिकृत फिलस्तीनी इलाकों की कड़ी नाकेबन्दी कर दी, जिसकी वजह से तमाम फिलस्तीनी (तकरीबन १४ लाख) अपने घरों में बंद रहे और काम-काज पर भी नहीं जा पाये। इतना ही नहीं, फिलस्तीनियों पर इजराइली सैनिकों ने पहले से ज्यादा कहर ढाना शुरू कर दिया है, जिससे मुक्ति दिलाना सद्दाम हुसैन की औकात से बाहर की बात है।

इजराइली अधिकृत गाजापट्टी और पश्चिमी किनारा क्षेत्र खाली कराना तो अब और भी संभव नहीं लगता। अगर यह खाली ही करना होगा तो सद्दाम हुसैन के डर से अमरीका इजराइल को फिलस्तीनी क्षेत्र से हट जाने को कहेगा, मौजूदा स्थिति में ऐसा सोचना तो फिजूल लगता है। सो रहता तो अमरीका फिलस्तीनी हित में संयुक्त राष्ट्र द्वारा पारित प्रस्ताव को ही वीटो नहीं करता और अमरीका संयुक्त राष्ट्र की कितनी परवाह करता है, इस सम्बन्ध में सद्दाम हुसैन को अब तक जो कोई गलतफहमी रही होगी वे निश्चित रूप से दूर हो गयी होगी। क्योंकि उन्हें लग रहा था कि सुरक्षा परिषद् अमरीका को इराक के खिलाफ हथियारों के इस्तेमाल का अधिकार नहीं देगा और फिलस्तीनी मामला उछाल कर श्री हुसैन कई देशों को अपने पक्ष में कर लेंगे। सद्दाम हुसैन युद्ध के लिए तैयार जरूर थे और वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि कुवैत पर कब्जा करना काफी महंगा पड़ेगा लेकिन उन्होंने ये नहीं सोचा था कि युद्ध की स्थिति में इराक बिल्कुल अकेला पड़ जायेगा, जबकि कई बड़े देश अभी भी तटस्थता की नीति अपनाये हुए हैं।

इराक ने अपनी मजबूत सैनिक व्यवस्था पर पूरा इत्मीनान होने की वजह से जंग टालने में कोई रुचि नहीं ली, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि सिर्फ अमरीका फंसा है (जैसा कि 'इंटरनेशनल हेरल्ड ट्रिब्यून' ने छापा है) और सद्दाम हुसैन को मजे-ही-मजे हैं। जॉर्ज बुश जितना फंसे हैं, उससे कहीं ज्यादा बुरी तरह सद्दाम हुसैन फंसे हैं, क्योंकि अपनी-अपनी ताकत के घमंड में चूर दोनों ही नेताओं ने इस युद्ध को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया है।

फर्क सिर्फ इतना है कि अमरीका के लिए जहां यह बड़ी शर्मनाक बात है कि जिस लड़ाई का अन्त उन्हें २४ घंटे के अन्दर नजर आ रहा था उसे वे २४ दिन बीत जाने के बाद भी सरंजाम नहीं दे पाये। वहीं सद्दाम हुसैन ने अपने थोथे दम्भ और बेजान महात्वाकांक्षा के लिए समूचे इराक को बर्बादी के कगार पर ला खड़ा किया है। बहुराष्ट्रीय सेनाओं से कई गुना ज्यादा नुकसान इराकी सेना को उठाना पड़ रहा है, इसमें तो दो राय हो ही नहीं सकती। इतना ही नहीं, अमरीका और उसके मित्र देशों के सैनिक मारे जा रहे हैं और हथियार नष्ट हो रहे हैं, वो भी ज्यादा नहीं, क्योंकि श्री हुसैन दूसरी ही चाल चल रहे हैं। वे अमरीकी हमलों का जवाब देकर और उसके सैनिकों पर हमले करके अपनी सैन्य-क्षमता बर्बाद नहीं करना चाहते। उन्होंने 'दूर की' सोच रखी है जिसका खामियाजा इराकी जनता को भुगतना पड़ रहा है और धन-जन की बेतहाशा क्षति हो रही है, क्योंकि बहुराष्ट्रीय सेना ने अब इराक के रिहाइशी इलाकों पर धुआंधार हमले शुरू कर दिये हैं। यह अमरीकी बौखलाहट की पराकाष्ठा का द्योतक है, जो तमाम दिनों की भीषण बमवर्षा के बावजूद इराक को पछाड़ न पाने की वजह से पैदा हुई है। इसी धृति ने अमरीका की मति मार दी है और सारे मानवीय मूल्यों और आदर्शों को ताक पर रखकर अमेकी सेना ज्यादती पर उतर आयी है। अमेकी रक्षामंत्री डिक चेनी और विदेशमंत्री जेम्स बेकर बार-बार कहते रहे हैं कि सिर्फ सैनिक ठिकानेनष्ट किये जायें, हवाई हमले में इस बात का पूरा ख्याल रखा जा रहा है, क्योंकि युद्ध का उद्देश्य कुवैत को इराकी कब्जे से मुक्त कराना है, कि इराक को बर्बाद करना। हो सकता है शुरू के १५ दिनों तक यह युद्ध-दर्शन सही रहा हो, लेकि बहुराष्ट्रीय सेना ने इराक के राष्ट्रपति भवन को भी हमले का निशाना बनाया, जिसके पीछे यह तर्क दिया कि लड़ाई के लिए दोषी सद्दाम हुसैन हैं न कि इराकी जनता। अमरीकी विश्लेषक सोच रहे कि श्री हुसैन को पकड़ लेना या मरवा देना ही युद्ध का अंत है। इराकी सेना का मनोबल गिराने के लिए अमरीकी समर्थक पश्चिमी मीडिया ने राम खोखलेपन को घृणित ढंग से सामने लाकर रख दिया है, जो इराक जैसे छोटे देश को नीचा दिखाने के लिए दी जा रही आदर्शों और सिद्धांतों की बलि की बेतहाशा क्षति हो रही है, क्योंकि बहुराष्ट्रीय सेना ने अब इराक के रिहाइशी इलाकों पर धुआंधार हमले शुरू कर दिये हैं। यह अमरीकी बौखलाहट की पराकाष्ठा का द्योतक है, जो तमाम दिनों की भीषण बमवर्षा के बावजूद इराक को पछाड़ न पाने की वजह से पैदा हुई है। इसी धृति ने अमरीका की मति मार दी है और सारे मानवीय मूल्यों और आदर्शों को ताक पर रखकर अमेकी सेना ज्यादती पर उतर आयी है। अमेकी रक्षामंत्री डिक चेनी और विदेशमंत्री जेम्स बेकर बार-बार कहते रहे हैं कि सिर्फ सैनिक ठिकानेनष्ट किये जायें, हवाई हमले में इस बात का पूरा ख्याल रखा जा रहा है, क्योंकि युद्ध का उद्देश्य कुवैत को इराकी कब्जे से मुक्त कराना है, कि इराक को बर्बाद करना। हो सकता है शुरू के १५ दिनों तक यह युद्ध-दर्शन सही रहा हो, लेकि बहुराष्ट्रीय सेना ने इराक के राष्ट्रपति भवन को भी हमले का निशाना बनाया, जिसके पीछे यह तर्क दिया कि लड़ाई के लिए दोषी सद्दाम हुसैन हैं न कि इराकी जनता। अमरीकी विश्लेषक सोच रहे कि श्री हुसैन को पकड़ लेना या मरवा देना ही युद्ध का अंत है। इराकी सेना का मनोबल गिराने के लिए अमरीकी समर्थक पश्चिमी मीडिया ने राम खोखलेपन को घृणित ढंग से सामने लाकर रख दिया है, जो इराक जैसे छोटे देश को नीचा दिखाने के लिए दी जा रही आदर्शों और सिद्धांतों की बलि

बेहतर होगा कि संयुक्त राष्ट्र महासचिव जेवियर पेरेज द कुइयार अपनी हैसियत को देखते हुए किसी जटिल अन्तर्राष्ट्रीय समस्या पर कोई सुझाव या सलाह न ही दें। खाड़ी-युद्ध ने जिस तरह से संयुक्त राष्ट्र की ऐसी-की-तैसी करके रख दी है, वैसी थू-थू इसके पहले कभी नहीं हुई थी। तभी तो श्री कुइयार की अमरीकी मनमाने के आगे तो एक नहीं चल पायी और बार-बार इराक को बिना शर्त कुवैत से हट जाने को कहते रहे। उस समय तो खैर यह कहना एक तरह से सही भी था, क्यों कि इराक ने भी कुवैत की कमजोरी का नाजायज फायदा उठाया था। लेकिन जब इराकी विदेश मंत्री तारिक अजीज ने उन्हें एक बार नहीं, तीन-तीन बार पत्र लिखकर इस ओर ध्यान दिलाया कि बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने युद्ध में संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित मानदंडों को बिल्कुल उपेक्षा कर दी है तो श्री कुइयार ने अमरीका को बुरा-भला कहने (जो उनके बूते का है भी नहीं) के बजाय उल्टे इराक के प्रति ही नाराजगी जाहिर करके निष्पक्ष ही अपने मानसिक दिवालियेपन का परिचय दिया है। वो अमरीकी इशारे पर चलने को बाध्य है, क्योंकि अमरीका अगर इस पर उतर आये तो संयुक्त राष्ट्र के तमाम संगठनों का कारोबार चलना बंद कर दे, (१९८३ में यूनेस्को को अपने हिस्से का अंशदान रोक कर अमरीका अपने आर्थिक वर्चस्व का परिचय दे चुका है), तो फिर इराक या कोई अन्य देश ही क्यों माने? उन्हें अगर इसलिए संयुक्त राष्ट्र के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पालन करना होगा, क्योंकि वे कमजोर और गरीब देश हैं, तब तो फिर संयुक्त राष्ट्र के संपूर्ण सिद्धांतगत ढांचे में ही परिवर्तन करना जरूरी है। मौजूदा व्यवस्था के तहत तो छोटे देशों के स्वाभिमान की रक्षा तभी हो सकती है, जब वे सब-के सब इराक वाला रुख अख्तियार कर लें। कुवैत को इराकी कब्जे से मुक्त कराने के लिए संयुक्त राष्ट्र में हायतोबा मच गया, लेकिन आज अगर इराक पर अमरीका कब्जा कर ले तो संयुक्त राष्ट्र उसे मुक्त नहीं करा सकता। अफगानिस्तान, अंगोला, पनामा, ग्रेनेडा आदि का उदाहरण हमारी आंखों के सामने है।

दोनों पक्षों में कूटनीतिक फर्क यह है कि एक ओर जहां अमरीका युद्ध के लिए तैयार नहीं था और जमीनी लड़ाई में भी काफी देर से उतरना चाहता था, वहीं इराक पिछले दस वर्षों से युद्ध के इंतजाम में ही जुटा था। इराक ने सबसे ज्यादा थल सेना पर खर्च किया है और सद्दाम हुसैन को मुख्य रूप से भरोसा भी इसी पर है, इसीलिए उन्होंने अमरीकी सेना को मैदानी जंग में घसीटने की चाल चली। बहुराष्ट्रीय सेना ने यह सोच रखा था कि हवाई हमले करके ही इराक के तमाम सैनिक ठिकाने नष्ट कर दिये जायं ताकि जमीनी लड़ाई अगर लड़ने की जरूरत पड़ी भी तो वे महज मामूली हो, क्योंकि इराकी वायुसेना की कमजोरी उसे मालूम थी। उसी तरह इराक ने हवाई हमले से अपने विशाल तोपखाने को बचाने के लिए ऐसे-ऐसे भूमिगत बंकरों की व्यवस्था कर ली कि बमवर्षा करते-करते अमरीका थक जाये और बीच में ही उसे जमीनी लड़ाई में खींच लिया जाये। जैसा कि अमरीका ने इस अभियान का नाम दिया है 'ऑपरेशन डेजर्ट स्टॉर्म'- ठीक उसके अनुकूल रेगिस्तानी अंधड़ में इराकी फौज ने निबटना अमरीकी सेना के लिए काफी मंगा पड़ेगा, क्योंकि जमीनी हमलों में इराकी की वही स्थिति है, जो हवाई हमलों में अमरीका की थी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इराकी तोपखाने में ऐसे-ऐसे तोप, टैंक, बख्तरबंद गाड़ियां और मशीनगन हैं, जो बहुराष्ट्रीय सेना के पास हैं ही नहीं और वे सारे हथियार सद्दाम हुसैन ने पश्चिमी देशों से मुंहमांगी कीमत पर खरीदे हैं, जो आज हमलों का निशाना बने हुए हैं।

कहां तो अमरीका इस जंग के माध्यम से वियतनाम युद्ध के समय हुई बेइज्जती से उबरना चाहता था, जबकि उस समय लड़ाई मुख्य रूप से सोवियत संघ के साथ थी। लेकिन लगता है इस लड़ाई में अमरीका को पहले से ज्यादा अपमानजनक स्थिति झेलनी होगी, क्योंकि इजराइल के लिए धैर्य रखना संभव नहीं हो पा रहा है और इजराइल के लड़ाई में शामिल होने का मतलब है सारे मुस्लिम देशों का इराक के साथ हो जाना। सीरिया ने पैंतरा बदला है, पाकिस्तान के लोग अपने प्रधानमंत्री नवाजशरीफ कीअमरीकी चौंचलेबाजी से नाराज हैं, सऊदी अरब को तो इराक साबूत नहीं ही छोड़ेगा, लेकिन शांति की पहल करने वाले ईरान ने साफ कह दिया है कि इजराइल ने चीं-चूपड़ की तो वह इराक की ओर से जंग में कूद पड़ेगा। सोवियत संघ अपनी चेतावनी दुहरा चुका है, जर्मनी कोई रुचि नहीं ले रहा- जैसा जॉर्ज बुश ने सोचा नहीं था। अगर इराक भी अमरीका की तरह बौखला जाये और रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल कर दे तो उसके बाद के विनाश के दोष से अमरीका भी बच नहीं सकता।

शशिधर खां